प्र05.– नगरीय समाज से क्या अभिप्राय है। इसकी विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?

उत्तर– जिस बड़े क्षेत्र में अधिकाँश व्यक्ति गैर कृषि व्यवसायों से आजीविका उपार्जित करते हैं तथा जिनके बीच औपचारिकता प्रतिस्पर्द्धा तथा द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता होती है, उसी को नगरीय समाज कहा जाता है।

परिभाषाएँः– निम्नलिखित विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है–

पी0सी0 लूमिश के अनुसारः– नगर एक ऐसा समाज है जिसे अन्य समाजों से जनसंख्या के आकार और घनत्व व्यवसाय की प्रकृति तथा सामाजिक सम्बन्धों की भिन्नता जैसी विशेषताओं के आधार पर पृथक किया जा सकता है।

दुर्खीम के अनुसार – नगर एक ऐसा समाज है जिसके सदस्य सावयवी एकता के द्वारा आपस में बैधे हुए है।

लूईसवर्थ के अनुसारः– नगरीय समुदाय को सामाजिक विभिन्नता वाले व्यक्तियों के एक बड़े तथा घने बसे हुए स्थायी क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नगरीय समाज सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषमताओं से युक्त एक ऐसा समाज है जिसमें विकसित प्रौद्योगिकी आर्थिक क्रियाओं का आधार होती है तथा व्यक्तिवादिता, घनी आबादी और प्रतिस्पर्द्धा के कारण जहाँ नियंत्रण के औपचारिक साधनों के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित किया जाता है।

नगरीय समाज की विशेषताएँ– नगरीय समाज की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **जनसंख्या का अधिक घनत्वः–** नगरीय समाज में जनसंख्या घनी होने के कारण प्रति वर्ग मील जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक होने के कारण नगरों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है। दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई जैसे नगरों में जनसंख्या का घनत्व 10,000 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है। इन नगरों के कुछ भागों में जनसंख्या का घनत्व 15,000 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 से

भी अधिक है। वर्तमान समय में 10 लाख से भी अधिक जनसंख्या वाले तेईस नगरों में यहाँ की कुल नगरीय जनसंख्या का आधे से अधिक भाग निवास करता है।

2. **जनसंख्या की विभिन्नताः–** नगरों में विभिन्न धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, जातियों, वर्गों, प्रजातियों, भाषाओं एवं प्रांतों से सम्बन्धित लोग निवास करते है। उनकी वेशभूषा, जीवनस्तर और आदर्शों में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार नगर एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ सभी को अपनी रूचि तथा आवश्यकता वाले समूह मिल जाते है।
3. **श्रम–विभाजन तथा विशेषीकरणः–** शहर में व्यक्ति अलग–2 कार्यों में लगे होते हैं तथा एक व्यक्ति किसी एक ही कार्य का विशेषज्ञ होता है अर्थात उत्पादन से सम्बन्धित कारखानें में व्यक्ति सभी कार्यों को नहीं करता। नगरों में श्रम–विभाजन और विशेषीकरण की प्रक्रिया को ही अपनाया जाता है।
4. **आर्थिक कियाओं के केन्द्रः–** नगरों का उदय आर्थिक जीवन की सफलता से हुआ तथा वर्तमान समय में भी नगरीय समुदाय आर्थिक कियाओं के केन्द्र बने हुए हैं। नगरों में अधिकांश व्यक्ति अत्यधिक उत्पादन तथा प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए है। संचार, सुरक्षा, न्याय तथा यातायात की सुविधाओं के कारण लोग नगरों में रहना पसन्द करते हैं।
5. **द्वैतीयक सम्बन्धों की प्रधानताः–** नगरों में विभिन्न समितियों, समूहों, और संगठनों की सदस्यता का आधार द्वैतीयक सम्बन्ध ही हैं। चूँकि नगरों की जनसंख्या अधिक होती है अतः यहाँ सभी लोगों से प्राथमिक तथा आमने सामने के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं है। नगरीय लोगों में औपचारिक एवं द्वैतीयक सम्बन्धों की प्रधानता पायी जाती है।
6. **व्यक्तिवादिताः–** नगरों में समुदायिक भावना का पूर्णतया अभाव होता है। इसके स्थान पर व्यक्तिवाद की भावना प्रबल होती है। प्रत्येक व्यक्ति समुदाय की अपेक्षा स्वयं की चिन्ता अधिक करता है।

7. **परिवार के महत्व में ह्रासः–** नगर में परिवार का आकार छोटा होता है तथा व्यक्ति और समुदाय के जीवन में परिवार का महत्व कम होता है। व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण परिवार की स्थिति द्वारा नहीं होता वरन् व्यक्ति की योग्यता पर उसकी सामाजिक स्थिति निर्भर करती है।

8. **स्थानीय पृथक्करणः–** नगरीय समाज में विशेषीकरण के कारण प्रत्येक कार्य का स्थान सुनिश्चित होता है। नगर के मध्यवर्ती भाग में सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी कार्यालय होते हैं तथा इनके चारों ओर प्रमुख व्यापारिक संस्थान, होटल, रेस्टोरेंट तथा मनोरंजन के साधन होते हैं।

9. **सामाजिक समस्याओं का केन्द्रः–** नगरीय समाज अपराध, बाल अपराध, वेश्यावृत्ति, बेकारी, गन्दी बस्तियाँ, निम्न स्वास्थ्य, निर्धनता, मद्यपान, कुपोषण, वर्ग संघर्ष तथा वायु प्रदूषण आदि के केन्द्र हैं। नगरीय समाज के आकार में वृद्धि होने के साथ ही समस्याओं में भी अनवरत् वृद्धि होती जा रही है।

10. **सामाजिक गतिशीलताः–** नगरीय पर्यावरण व्यक्ति की पारिवारिक प्रस्थिति को महत्व नहीं देता बल्कि उसकी योग्यता को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ पर व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे की कार्यक्षमता, अविष्कार के गुण तथा व्यवहार कुशलता को महत्व दिया जाता है।

11. **हित–प्रधान सहनशीलताः–** डेविस नगरीय समाज की इस विशेषता को महत्वपूर्ण माना है। सभी व्यक्तियों के स्वार्थ एक दूसरे से भिन्न होने के कारण व्यक्ति ऊपर से सहनशीलता प्रदर्शित करके अपने हितों को पूरा करने का प्रयास करता है।

12. **शिक्षित तथा तर्क प्रधान जीवनः–** नगरों में शिक्षा की अधिक सुविधाएँ उपलब्ध होती है तथा सामाजिक जागरूकता के कारण लोग शिक्षा को जीवन का आवश्यक अंग मानते है। परम्पराओं के प्रति उदासीनता तथा नवीनता के प्रति लगाव इस समाज की स्थायी विशेषता है।

प्र06– ग्रामीण समाज को परिभाषित करते हुए इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए –

उत्तर– केवल उसी समूह को ग्रामीण कहा जा सकता है जिसमें क्रियाएं प्रकृति से सम्बन्धित हो जिसका आकार छोटा हो तथा जिसके सदस्यों के बीच घनिष्ठ तथा प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते हौ।

परिभाषाऐं– ग्रामीण समाज की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

मेरिल तथा एल्ड्रिज के अनुसार– ग्रामीण समुदाय में संस्थाओं तथा ऐसे लोगों का समावेश होता है जो एक छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते है तथा सामान्य व प्राथमिक हितों द्वारा आपस में बंधे रहते है।

सैन्डरसन के अनुसार- एक ग्रामीण समुदाय में स्थानीय क्षेत्र के लोगों की समाजिक अंतक्रियाओं और उन संस्थाओं का समावेश होता है जिससे वह खेतों के चारों ओर बिखरी हुई झोपड़ी में रहते हैं तथा जो उनकी सामान्य क्रियाओं का केन्द्र होता है।

सिम्स के अनुसार– जिस क्षेत्र में एक समूह के लोगों के लगभग सभी महत्वपूर्ण हितों की संतुष्टि प्राथमिक सम्बन्धों के आधार पर हो जाती है उसी समूह को ग्रामीण समुदाय कहा जा सकता है

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार– जिस समुदाय में कृषि व्यवसाय प्राथमिक सम्बन्ध, परम्परागत जीवन, आत्मनिर्भरता तथा प्रकृति से समीपता जैसी विशेषताएं पायी जाती हैं उसी समुदाय को ग्रमीण समुदाय कहा जा सकता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि गांव वह समुदाय है जो अपेक्षाकृत समरसता, अनौपचारिक प्राथमिक समूहों की प्रधानता जनसंख्या के कम घनत्व तथा मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि की विशेषताओं से युक्त होता है।

ग्रामीण समाज की विशेषताएं – भारतीय ग्रामीण समाज की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **कृषि मुख्य व्यवसाय** – गाँव की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर होती है। ग्रामीण समाज का प्रमुख व्यवसाय कृषि है अन्य व्यवसाय भी कृषि पर ही आधारित है होते हैं। ग्रामीण समाज की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है औद्योगीकरण के प्रभाव से दूसरे देशों में जहां ग्रामीण जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता कम हुई है वहीं भारतीय ग्रामों में कृषि पर निर्भरता बढ़ी है। समाजशास्त्री स्मिथ ने लिखा है– कृषि और संग्रह कार्य ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार हैं। कृषक और ग्रामीण प्रायः पर्यायवाची शब्द हैं।

2. **सीमित आकार** – ग्रामीण समाज का आकार बहुत छोटा होता है। गाँवों में कृषि व्यवसाय पर निर्भर रहने के कारण भूमि की पर्याप्त आवश्यकता पड़ती हैं। जहाँ कृषि योग्य भूमि होती है। समुदाय वहीं बस जाता है ग्रामीण समुदाय का आकार छोटा होने के कारण अनेक विचारकों ने इसे लघु समुदाय कहकर सम्बोधित किया है। स्मिथ का कथन है कि – लघु समुदाय और ग्रामीण समुदाय एक दुसरे के पर्यायवाची बन गये हैं।
3. **प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता** – ग्रामीण समुदाय का आकार छोटा होने के कारण वहां के निवासियों में सम्बन्धों का स्वयं प्राथमिक होता है। प्राथमिक सम्बन्धों का तात्पर्य है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित रहते हैं, दूसरे के हित में अपना हित देखते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे के द्वारा किये जाने वाले कार्यों का सम्पूर्ण ज्ञान होता है।
4. **परिवार का महत्व**– ग्रामीण समाज में परिवार का आकार बड़ा होता है तथा ऐसे परिवारों को संयुक्त परिवार कहा जाता है। एक से अधिक पीढ़ियों के सदस्य एक ही परिवार में रहते हैं जिस व्यक्ति का परिवार जितना सम्मानित होता है, धार्मिक व सामाजिक उत्सवों के अवसर पर उसे उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा मिल जाती है परिवार के सदस्य उन्हीं कार्यों को करते हैं जो परिवार द्वारा उचित समझे जाते है।
5. **धर्म एवं परम्परा का महत्व** – मनुष्य के व्यवहार पर नियंत्रण धर्म एवं परम्परा द्वारा रखा जाता है। गांव में धर्म को प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक कार्य का आधार माना जाता है ग्रामीण व्यक्ति धार्मिक विचारों से प्रभावित होते हैं। धर्म के प्रति उनके हृदय में अत्याधिक आस्था होती है। प्राचीन परम्पराओं तथा धर्म का पालन करना वे अपना कर्तव्य समझते है।
6. **श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का अभाव** – ग्रामीण समाज में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का अभाव पाया जाता है एक किसान कृषि से सम्बन्धित सभी कार्यों को जानता है और उसे करता भी है जैसें गांवों में एक व्यक्ति कुआं खोदना, खाद बनाना, फसल बोना, और काटना, सिंचाई करना, तथा बाजार में फसल विक्रय करना आदि सभी कार्यों को स्वयं ही करता है। श्रम विभाजन का अभाव होने के कारण विशेषीकरण भी नहीं होता है।
7. **सरल एवं सादा जीवन** – ग्रामीण जीवन में व्यक्ति का जीवन सरल होता है। वे निष्कपट, उदार, ईमानदार, और पवित्र विचारों के होते है। ग्रामीण प्रायः गरीब होते है तथा उनके पास इतना भी धन नहीं होता है कि वे अपने परिवार का पालन पोषण कर सकें। निर्धनता स्वयं ही व्यक्ति को सरल तथा पवित्र बना देती है।

8. **सामाजिक गति शीलता का अभाव** – ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन को स्वयं तथा समाज के लिए हानिप्रद समझते हैं। ग्रामीण जीवन पूरी तरह शान्त होता है। सोरोकिन तथा जिम्मरमैन ने ग्रामीण समुदाय की तुलना घड़े में रखे हुए शान्त जल से की है, जिसमें हलचल का अभाव होता है। उनका कथन है कि– ग्रामीण समुदाय घड़े के शान्त जल के समान है तथा नगरीय समुदाय केतली में उबलते हुए जल की तरह है, स्थायित्व पहले की वर्गगत विशेषता है तथा गतिशीलता दूसरे की है।

9. **जाति व जजमानी प्रथा की प्रधानता** – जाति के आधार पर गाँवों में संस्तरण पाया जाता है। जाति के सदस्य अपनी ही जाति में विवाह करते हैं। जाति की एक पंचायत होती है, जो अपने सदस्यों के जीवन को नियंत्रित करती है। जजमानी प्रथा के अन्तर्गत एक जाति दूसरी जाति की सेवा करती है तथा उसके बदले मे सेवा करने वाली जाति भी उसकी सेवा करती है या वस्तुओं में भुगतान प्राप्त करती है।

10. **अशिक्षा और भाग्यवादिता** – विश्व के सभी देशों में नगरों की अपेक्षा गांवों में शिक्षा का प्रतिशत अत्यधिक कम है परन्तु भारतीय गाँवों में शिक्षा का स्थर निम्न है अशिक्षित होने के कारण गांव के व्यक्ति अंधविश्वासों तथा कुरीतियों में जकड़े रहते हैं। अन्धविश्वासों के कारण विपत्तियों से लड़ने के स्थान पर ग्रामीण व्यक्ति भाग्य के समक्ष आत्मसमर्पण कर देते है।

11. **सामाजिक समरूपता** – भारतीय ग्रामों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरूपता देखने को मिलती हैं, उनके जीवन स्तर में शहरों की भाँति असमानता नहीं है। सभी लोग एक जैसी भाषा, त्यौहार–उत्सव, प्रथाओं तथा जीवन विधि का प्रयोग करते है।

12. **स्त्रियों की निम्न स्थिति**– भारतीय ग्रामीण समाजों में नारी की स्थिति अत्यधिक निम्न है। कन्या वध, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, विधवा–पुनर्विवाह का अभाव, आर्थिक दृष्टिकोण से पुरूषों पर निर्भरता, विवाह विच्छेद का अभाव आदि अनेक ऐसे कारण है जो भारतीय ग्रामीण नारियों की सामाजिक स्थिति को निम्न बनाये रखने में सहयोग देते है।

13. **प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध** – ग्रामीण समाज का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ग्रामवासी प्रकृति की गोद में ही जन्म लेते हैं तथा उसी में उनकी मृत्यु होती है। प्रकृति ही उनके धार्मिक विश्वासों का आधार है तथा प्रकृति ही उनका प्राकार ग्रामीण जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है। जो प्रकृतिक शक्तियों से प्रभावित न हो।

प्र07– वर्ग से आप क्या समझते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– आधुनिक भारतीय समाज एक ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें अनेक वर्गों द्वारा सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था विकसित हुई है। यद्यपि प्रत्येक युग में सामाजिक स्तरीकरण को एक आवश्यक घटना माना जाता रहा है लेकिन वर्तमान युग में संसार के अधिकांश समाज खुली प्रकृति के हैं जिनमें व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी उच्च अथवा निम्न स्तर में जा और आ सकता है। इससे न केवल सभी व्यक्तियों को आगे बढने के समान अवसर प्राप्त होते हैं बल्कि उन्हें व्यक्तिव सम्बन्धी गुणों में वृद्धि करने की प्रेरणा भी मिलती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्तमान भारतीय समाज में सभी व्यक्तियों को समान स्तर प्राप्त हो गया है बल्कि इससे केवल इतना स्पष्ट होता है कि वर्ग व्यवस्था प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और प्रयत्नों के आधार पर सामाजिक व्यवस्था में एक विशेष स्तरीकरण का ही एक स्वरूप है, यद्यपि इसकी प्रकृति और संरचना कुछ विशेषता लिए हुए है। वर्ग–व्यवस्था सामाजि स्तरीकरण का एक नवीन आधार होते हुए भी बहुत व्यापक और प्रभावपूर्ण आधार है।

वर्ग– वर्ग का सम्बन्ध एक विशेष स्थिति से होता है प्रत्येक समाज में सभी व्यक्ति अलग–अलग कार्य कर रहे होते है। उनका व्यवसाय, रूचि और कार्य करने का ढंग अलग–अलग प्रकार का होता है। इसके फलस्वरूप समाज में ऐसे अनेक स्तरों का निर्माण हो जाता है जिनमें समान स्थिति के व्यक्ति एक दूसरे से घनिष्ठता अथवा अपनेपन की भावना का अनुमान करने लगते हैं।

परिभाषा– इसकी प्रमुख प्ररिभाषा निम्नलिखित हैं–

आगबर्न के अनुसार– "एक सामाजिक वर्ग की मौलिक विशेषता दूसरे सामाजिक वर्गों की तुलना में उसकी उच्च अथवा निम्न सामाजिक स्थिति है।

मैकाइवर के अनुसार – कि सामाजिक वर्ग समुदाय का वह भाग है जिसे सामाजिक स्थिति के अधार पर शेष भाग अलग कर दिया हो। **जिंसबर्ट** के अनुसार" एक सामाजिक वर्ग व्यक्तियों का समूह अथवा एक विशेष श्रेणी है जिसकी समाज में एक विशेष स्थिति होती है। यह विशेष स्थिति ही अन्य समूहों से उनके सम्बन्ध को निर्धारित करती है।

मार्क्स के अनुसार– "एक सामाजिक वर्ग का उसके उत्पादन के साधनों और सम्पत्ति के वितरण के साथ होने वाले सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है।

गोल्डनर के अनुसार – एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों अथवा परिवारों की समग्रता है जिनकी आर्थिक स्थिति लगभग समान होती है।

सामाजिक वर्ग की विशेषताएँ– इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **निश्चित संस्तरण -** वर्ग व्यवस्था में सभी सामाजिक वर्ग समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होते हैं। भारत में सभी वर्ग कुछ श्रेणियों में विभाजित हैं जिनमें कुछ का स्थान ऊँचा और दूसरे वर्गों का स्थान उनकी अपेक्षा नीचा है। उच्च वर्गों में सदस्यों की संख्या सबसे कम है लेकिन उन्हें सबसे अधिक शक्ति और प्रतिष्ठा मिली हुई है। दूसरी ओर, सबसे निम्न वर्ग के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक है लेकिन फिर भी वे अधिकांश सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार भारत में सामाजिक वर्गों की संरचना के अन्दर उच्च वर्ग के सदस्य निम्न वर्ग के सदस्यों से सामाजिक दूरी बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं।

2. **वर्ग चेतना -** एक वर्ग के सदस्यों में लगभग समान मनोवृत्तियों और व्यवहार के समान तरीके पाये जाते हैं। इसी के फलस्वरूप उनमें 'समानता की चेतना' उत्पन्न होती है। अनेक विद्वानों ने इसी चेतना को वर्ग चेतना के नाम से सम्बोधित किया है। यह वर्ग चेतना एक विशेष वर्ग के सदस्यों को अपने अधिकारों में वृद्धि करने का ही प्रोत्साहन नहीं देती बल्कि उन्हें दूसरे वर्गों से प्रतिस्पर्द्धा करने की भी प्रेरणा देती है। वर्तमान काल में इस वर्ग चेतना का रूप बहुत संकीर्ण हो जाने से ही हमारे समाज में अनेक वर्ग–संघर्ष को प्रोत्साहन मिलता है।

3. **उपवर्गों का निर्माण -** यद्यपि समाज शास्त्रियों ने तीन प्रमुख वर्गों अर्थात् उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग का ही उल्लेख किया है लेकिन भारत में इनमें से प्रत्येक वर्ग अनेक उपवर्गों में विभाजित है। उदाहरण के लिए, मध्यम वर्ग में भी सभी व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति, प्रतिष्ठा, शक्ति अथवा सुविधाएं समान नहीं हैं। ऐसी स्थिति में एक ही वर्ग के अन्दर अनेक उपवर्ग बन जाते हैं और सभी उपवर्गों में पृथक–पृथक वर्ग चेतना पायी जाती है।

4. **सामान्य जीवन-** प्रत्येक वर्ग के सदस्य एक विशेष ढंग से जीवन व्यतीत करते हैं, जैस–धनाढ्य वर्ग वस्तुओं का अधिक से अधिक अपव्यय करना अपनी महानता का प्रतीक मानता है, जबकि मध्यम वर्ग के सदस्य रूढ़ियों और प्रथाओं से जकड़े रहकर ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर लेते हैं। निम्न वर्ग का जीवन इन दोनों वर्गों की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न प्रकृति का होता है।

5. **खुलापन तथा उतार–चढ़ाव -** वर्गों की प्रकृति खुली हुई होती है। अर्थात् एक विशेष योग्यता अथवा कार्यकुशलता होने पर कोई भी व्यक्ति किसी भी वर्ग का सदस्य हो सकता है अथवा भिन्न–भिन्न आधारों पर एक साथ अनेक वर्गों का सदस्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त, वर्ग की स्थिति में उतार–चढ़ाव होते रहना भी एक सामान्य नियम है व्यक्ति की आर्थिक स्थिति

में परिवर्तन होने से उनकी वर्गगत स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है। इसी आधार पर वर्ग को उदग्र शीर्ष (Vertical group) भी कहा जाता है।

6. **आर्थिक आधार का महात्व** वर्ग–निर्माण का सबसे प्रमुख आधार व्यक्ति की आर्थिक स्थिति है। यद्यपि राजनीतिक या बौद्धिक सफलता से भी उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त हो सकती है। लेकिन ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है। मार्क्स ने तो आर्थिक आधार को ही वर्ग–निर्माण का एक मात्र कारक मानते हुए सभी व्यक्तियों को उच्च, मध्यम तथा श्रामिक जैसे तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित कर दिया है। वर्तमान समाज में लिंग अथवा आयु का वर्ग की सदस्यता से अधिक सम्बन्ध नहीं है क्योंकि आर्थिक रूप से समृद्ध व्यक्ति किसी भी आयु या लिंग का होने पर भी उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

7. **पूर्णतया अर्जित -** वर्ग की सदस्यता पूर्णतया व्यक्ति की योग्यता और कार्यकुशलता पर निर्भर होती है। वर्ग की सदस्यता व्यक्ति को अपने आप नहीं मिलती बल्कि इसके लिए उसे प्रयत्न करने पड़ते हैं। कुछ समय के लिए योग्यता न होने पर भी व्यक्ति को उच्च वर्ग प्राप्त हो सकता है। लेकिन स्थायी रूप से उसे वही वर्ग प्राप्त होता है जिसके अनुरूप उसमें योग्यता होती है। यही कारण है कि उच्च वर्ग का सदस्य बाद में निम्न वर्ग में पहुँच सकता है और एक निम्न वर्ग में जन्म लेने वाला श्रमिक अपने प्रयत्नों और योग्यता से उच्च वर्ग का सदस्य हो सकता है।

8. **वर्गो की उपस्थिति आवश्यक है**– प्रत्येक समाज में सभी सदस्यों की योग्यता, बुद्धि और रूचियों में अन्तर होता है। ऐसी स्थिति में समाज में विभिन्न वर्गों का होना अत्यधिक आवश्यक है जिससे सभी व्यक्तियों को अपनी योग्यता के अनुसार पद मिल सके तथा इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था स्थायी रह सके। यद्यपि मार्क्स ने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जो वर्गरहित हो लेकिन यह भ्रमपूर्ण धारणा है। सामाजिक रूप से सभी व्यक्तियों

को कितना ही समान क्यों न कर दिया जाये लेकिन उनकी बुद्धि और कुशलता उन्हें एक–दूसरे से उच्च अथवा निम्न जरूर बना देगी।

प्र08– भारत में वर्ग विभाजन के प्रमुख आधारों का उल्लेख कीजिए –

उत्तर– भारत में वर्ग विभाजन के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

1. **सम्पत्ति, धन और आय -** हमारे समाज में आज वर्ग–निर्माण के अधार के रूप में सम्पत्ति और आय को सबसे प्रमुख स्थान दिया जाता है। इसका कारण यह है कि वर्तमान जटिल समाजों में धन के द्वारा न केवल सभी वस्तुओं खरीदी जा सकती है बल्कि धन के संचय को ही व्यक्ति की सफलता का अधार भी मान लिया जाता है दूसरी बात यह है कि धन के द्वारा व्यक्ति को जीवन–स्तर और विकास के अवसरों में वृद्धि करने की भी सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं। वर्तमान समाज में यद्यपि सरकार अनेकों करों के द्वारा सम्पत्ति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढी के लिए हस्तान्तरित करने पर अनेक बडे–बडे कर लगाती है लेकिन तो भी यह सच है कि उत्तराधिकारी में बड़ी सम्पत्ति प्राप्त होने से व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था में सरलता से उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है। मार्टिण्डेल और मौनाकैसी का भी यह विचार है कि उत्पादन के साधनों और उत्पादित पदार्थों पर व्यक्ति का नियन्त्रण जितना अधिक होता है, उसे उतने ही उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त हो जाती है। मार्क्स का तो यहां तक विचार है कि' व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा' के कारण ही वर्गों की संख्या में भी वृद्धि होती गयी।

केवल सम्पत्ति और धन की मात्रा ही वर्ग–विभाजन का आधार नहीं है बल्कि एक विशेष वर्ग में व्यक्ति की सदस्यता इस बात पर भी निर्भर होती है। कि उसने सम्पत्ति को किस प्रकार प्राप्त किया है उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी निम्न समझे जाने वाले पेशे के द्वारा बहुत सा धन अर्जित कर

ले तो साधारणतया उसे उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त नहीं हो सकती। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति अधिक सम्पत्ति अर्जित करके भी उसका घृणित ढंग से उपयोग करे अथवा आवश्यकता होने पर भी उसे काम में न लाये तो उसे उच्च वर्ग का सदस्य कहने में आपत्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति उत्तराधिकार में अधिक सम्पत्ति प्राप्त करते हैं उन्हें भावात्मक रूप से उतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो पाती जितनी प्रतिष्ठा उन व्यक्तियों को प्राप्त होती हैं। जो अपने ही प्रयत्नों से सम्पत्ति को अर्जित करते हैं।

अन्तिम बात यह है कि सभी समाजों में धन और सम्पत्ति वर्ग–निर्माण का समान रूप से महत्वपूर्ण आधार नहीं होता। यद्यपि सभी समाजों में धन और सम्पत्ति के साथ कुछ न कुछ प्रतिष्ठा जरूर जुड़ी रहती है लेकिन आदिम सामाजों में व्यक्ति को एक विशेष वर्ग की सदस्यता प्राप्त होते समय उसकी सम्पत्ति का महत्व अपेक्षाकृत कुछ कम होता है। इसके विपरीत, आधुनिक भारत जैसे समाजों में जहां अनेक संस्कृतियों और विचारों के व्यक्ति के साथ–साथ रहते हैं। तथा उनके बीच औपचारिक सम्बन्ध पाये जाते हैं, वहां धन और सम्पत्ति को ही वर्ग निर्माण का सबसे प्रमुख आधार मान लिया जाता है।

2. **परिवार तथा नातेदारी**– भारत में व्यक्ति की वर्ग स्थिति का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वह किस परिवार का सदस्य है और वह जिन व्यक्तियों का सम्बन्धी है, उनकी सामाजिक स्थिति क्या है। यही कारण कि वर्ग–व्यवस्था में एक बार व्यक्ति को जो स्थिति मिल जाती है, उनकी सामाजिक स्थिति क्या है? यही कारण है कि वर्ग–व्यवस्था में एक बार व्यक्ति को जो स्थिति मिल जाती है, वह साधारणतया क पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। इसके पश्चात् भी जैसा कि बीरस्टीड का कथन है कि 'सामाजिक वर्ग की कसौटी के रूप में परिवार और नातेदारी का महत्व सभी समाजों में समान नहीं बल्कि वह अनेक आधारों में

से केवल एक विशेष आधार है जिसका उपयोग सम्पूर्ण व्यवस्था में एक अंग के रूप में ही किया जा सकता है।" हमारे जैसे समाज में आज भी व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति उसे एक विशेष वर्ग की सदस्यता देने में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट होता है कि एक विशेष वर्ग की सदस्यता यदि परिवार और नातेदारी पर आधारित होती है, तब सामान्यतया यह समझ लेना चाहिए कि वहां की सामाजिक व्यवस्था अर्जित पदों की अपेक्षा प्रदत्त पदों को अधिक महत्व देती है।

3. **निवास की स्थिति** –अनेक विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति की वर्ग–स्थिति इस बात पर भी निर्भर होती है कि उसके निवास–स्थान के चारों ओर की परिस्थिति सम्बन्धी विशेषताएं कैसी हैं? भारत में साधारणतया जिन व्यक्तियों का निवास स्थान मुक्त आबादी से बाहर के क्षेत्र में होता है, उन्हें अधिक प्रतिष्ठा दे दी जाती है। वार्नर ने यह बताया है कि कुछ बहुत पुराने परिवार जो मुख्य आबादी के मध्य में रहते हैं, उन्हें भी उच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त हो जाती है यदि वे अनेक पीढ़ियों से उसकी स्थान पर रहते आये हों।

4. **निवास स्थान की अवधि -** एक व्यक्ति चाहे कितनी ही सम्पत्ति एकत्रित कर ले अथवा कितने ही अच्छे क्षेत्र में अपना निवास बना ले लेकिन साधारणतया उसे उच्च वर्ग की सदस्यता तब तक प्राप्त नहीं होती जब तक वह एक पुराने परिवार का सदस्य नहीं होता। यही कारण है कि वर्ग–व्यवस्था में ऊँचा स्थान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपने जन्म स्थान अथवा पूर्वजों के स्थान को छोड़ना नहीं चाहते। साधारणतया जो व्यक्ति सदैव परिवर्तन करते रहते हैं, उन्हें साधन–सम्पन्न होने पर भी सर्वोच्च वर्ग की सदस्यता प्राप्त नहीं हो पाती। यद्यपि यह बताना बहुत कठिन है कि पुराने परिवार अथवा निवास–स्थान की अवधि के साथ प्रतिष्ठा की भावना

क्यों जुड़ी होती है लेकिन यह भावना प्रत्येक समाज में पायी अवश्य जाती है।

5. **व्यवसाय की प्राकृति** –बहुत लम्बे समय से ही यह सिद्ध होता आया है कि व्यक्ति जिस प्रकार से आजीविका उपार्जित करते हैं, उसका उनकी वर्ग–स्थिति पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है उदाहरण के लिए बड़े–बड़े राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ अधिकारी, प्रशासक, प्रबन्धक, शिक्षाधिकारी, निगम संचालक, कानून–विज्ञ, चिकित्सक और इन्जीनियर आदि चाहे कैसी भी आर्थिक स्थिति में हों अथवा उनके परिवार की स्थिति चाहे कैसी भी रही हो लेकिन उन्हें वर्ग–व्यवस्था में साधारणतया ऊँचा स्थान प्राप्त हो जाता है। इसके विपरीत एक व्यक्ति तस्करी, शराब के ठेके अथवा किसी अनैतिक व्यवसाय के द्वारा चाहे कितनी ही बड़ी धनराशि एकत्रित कर ले लेकिन सम्पूर्ण वर्ग–व्यवस्था में उसे कोई उच्च स्थान प्राप्त नहीं हो पाता। इसके ष्चात् भी एक सिद्धान्त के रूप में यह कहा जाता है, जबकि शान्तिकाल में विभिन्न व्यवसायों में लगे व्यक्तियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। धर्म प्रधान स्थानों में पुरोहिती के व्यवसाय को सर्वोच्च माना जाता है, जबकि प्रगतिशील समाजों में शिक्षा और विज्ञान से सम्बन्धित व्यवसाय प्रतिष्ठा प्राप्त होती हैं।

6. **शिक्षा** –सभी समाजों में शिक्षा, चाहे उसका सम्बन्ध धर्म से हो अथवा उद्योग से, व्यक्ति को एक विशेष स्थिति प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण आधार रहा है। इसका काण यह है कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयत्नों की ही आवश्यकता नहीं होती बल्कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति से महत्वपूर्ण कार्यों को उचित रूप से पूरा करने की आशा भी की जाती है। इतना अवश्य है कि कुछ समाजों में शिक्षित व्यक्तियों को दुहरें समाजों की तुलना में अधिक सम्मान दिया जाता है, जबकि अनेक समाजों में व्यक्ति का शिक्षित होना एक सामान्य सी बात है। धर्म प्रधान समाजों में तो धार्मिक ज्ञान प्राप्त किये बिना

व्यक्ति को सामाजिक स्थिति देने का प्रश्न ही नहीं उठता लेकिन आधुनिक भारतीय समाज में उच्च स्तर प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिक ज्ञान और रचनात्मक विचारधारा को अत्यधिक आवश्यक समझा जाता है। यही कारण है कि अत्यधिक विकसित देशों में भी कला के क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण करन वाले व्यक्ति वर्ग व्यवस्था में सर्वोच्च पद प्राप्त कर लेते हैं।

7. **धर्म-** यद्यपि एक विशेष वर्ग की स्थिति प्राप्त करने में धर्म को बहुत महत्वपूर्ण आधार तो नहीं माना जा सकता लेकिन साथ ही इसके प्रभाव की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। भारत जैसे समाज में जहां अनेक धार्मिक समुदाय पाये जाते हैं और जहां परम्परागत विचारों को प्राथमिकता दी जाती है, वहां आज भी व्यक्ति की वर्गगत स्थिति का निर्धारण करने में धर्म का प्रमुख हाथ रहता है। इसके पश्चात् भी यह सच है कि वर्तमान युग में जैस जैसे भारतीय समाज परम्पराओं से दूर हटकर मुक्त समाज की विशेषताओं को ग्रहण कर रहा है, वर्ग विभाजन के आधार के रूप में धर्म का महत्व भी कम होता जा रहा है।

प्र09. जाति तथा वर्ग में अन्तर बतलाइये?

उत्तर– जाति तथा वर्ग की अवधारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि इन दोनों की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है लेकिन फिर भी जाति तथा वर्ग के बीच अनेक समानताएं भी हैं सर्वप्रथम जाति और वर्ग सामाजिक संस्तरण के ही दो रूप हैं। इन दोनों में सामाजिक विषमता और सामाजिक दूरी का एक स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त, जातियों तथा वर्गों के लिए आचरण के कुछ निश्चित प्रतिमान निर्धारित हैं जिनके अनुसार ही एक विशेष जाति अथवा वर्ग के सदस्य से व्यवहार करने की आशा की जाती है इन समानताओं के बाद भी जाति तथा वर्ग के बीच भिन्नताएं अधिक हैं जिन्हें संक्षेप में निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है–

1. **जाति एक बन्द समूह है, जबकि वर्ग में खुलापन है**– प्रत्येक जाति की सदस्यता जन्म पर आधारित होती है जिसमें व्यक्ति जीवन पर्यन्त किसी तरह का परिवर्तन नहीं कर सकता। दूसरी ओर, वर्गों की प्रकृति इस अर्थ में खुली हुई है कि कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता, कुशलता, आर्थिक साधनों तथा सामाजिक स्थिति में सुधार करके पहले से अधिक ऊँचे वर्ग का सदस्य बन सकता है तथा योग्यता में कमी हो जाने पर पहले से निम्न वर्ग आ सकता है।

2. **जाति विभिन्नतामूलक होती है लेकिन वर्ग में स्थित है**– एक जांमत के सभी सदस्यों की स्थिति एक–दूसरे के पूर्णतया समान नहीं होती। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही जाति के अन्दर विभिन्न योग्यताओं और आर्थिक स्थिति वाले लोगों का समावेश होता है। केवल एक विशेष जाति में जन्म लेने के कारण ही वे उस जाति से सम्बन्धित होते हैं। दूसरी ओर, एक वर्ग के सभी सदस्यों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति एक दूसरे के लगभग समान होती है। जैसे ही किसी व्यक्ति की स्थिति अथवा कुशलता में परिवर्तन हो जाता है, उसके वर्ग की सदस्यता भी बदल जाती है।

3. **जाति एक व्यावसायिक समूह है वर्ग नहीं** – जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति का व्यवसाय अथवा पेशा पहले से ही निर्धारित होता है। प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है कि वह अपनी जाति के लिए निर्धारित व्यवसाय के द्वारा ही आजीविका उपार्जित कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति अपनी रूचि और साधनों के अनुसार ही किसी विशेष पेशे का चुनाव करता है।

4. **जाति की सदस्यता प्रदत्त हैं वर्ग की अर्जित**– प्रदत्त स्थिति वह होती है जो व्यक्ति को समाज द्वारा स्वयं प्रदान की जाती है। जाति की सदस्यता इस दृष्टिकोण से प्रदत्त है कि इसके लिए व्यक्ति को कोई प्रयास नहीं करने पड़ते बल्कि, व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है, उसकी सदस्यता

उसे स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। एक जाति के विभिन्न सदस्य शिक्षा, सम्पत्ति अथवा कुशलता में एक–दूसरे से चाहे कितने भी भिन्न हों वे समाज द्वारा प्रदत्त अपनी जातिगत सदस्यता में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। इसके विपरीत, वर्ग की सदस्यता इस दृष्टिकोण से अर्जित होती है। कि इसका निर्धारण व्यक्ति की योग्यता और कुशलता के आधार पर ही होता है। एक व्यक्ति निम्न वर्ग में तभी जा सकता है तब वह इसके लिए कठोर परिश्रम करें।

5. **जाति अन्तर्विवाही है वर्ग नहीं**– प्रत्येक जाति के लिए खान–पान, सामाजिक सम्पर्क तथा व्यवसाय के क्षेत्र में अनेक आदर्श नियम निर्धारित हैं लेकिन जाति मुख्यतः इस नियम पर आधारित होती है। कि कोई भी व्यक्ति अपनी जाति बाहर विवाह सम्बन्ध स्थापित होने पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं है। यह सच है कि व्यवहारिक रूप से एक वर्ग के सदस्य अपने से निम्न वर्ग के व्यक्ति का वैवाहिक सम्बन्ध अपने वर्ग में होने से रोकने का प्रयत्न करते हैं लेकिन सैद्धान्तिक रूप से विभिन्न वर्गों के बीच विवाह सम्बन्ध पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं होता।

6. **वर्गों की तुलना में जातियों के निषेध अधिक जटिल और स्पष्ट हैं**– जाति व्यवस्था के द्वारा प्रत्यके जाति के लिए व्यवहार सम्बन्धी बहुत व्यापक और स्पष्ट नियम निर्धारित किये गये हैं। इनकी अवहेलना करने पर व्यक्ति को कठोर सामाजिक दण्ड दिया जाता है। व्यावहारिक रूप से विभिन्न वर्गों के बीच खान–पान सामाजिक सम्पर्क तथा विवाह आदि के क्षेत्र में एक स्पष्ट सामाजिक दूरी देखने को मिलती है लेकिन इसके लिए कोई स्पष्ट और लिखित नियम नहीं होते। यही कारण है कि अक्सर विभिन्न वर्गों के बीच मधुर सम्बन्ध ही नहीं पाये जाते, बल्कि तरह–तरह के प्रयत्नों के द्वारा उन्हें एक दूसरे के समीप लाने का भी प्रयत्न किया जाता है।

7. **जातियों का विभाजन उदग्र होता है, वर्गों का समतल** – वर्गों की तुलना में जातियों का संस्तरण कहीं अधिक स्पष्ट और निश्चित प्राकृति का होता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जाति की सामाजिक स्थिति दूसरी जाति की तुलना में स्पष्ट रूप से उच्च अथवा निम्न होती है इसके विपरीत, विभिन्न वर्ग सामाजिक और निम्न आर्थिक आधार पर एक दूसरे से भिन्न अवश्य होते हैं। लेकिन किसी को भी दूसरे की तुलना में उच्च अथवा निम्न नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, उपयोगिता के आधार पर कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि उत्पादन के क्षेत्र में श्रमिक वर्ग का योगदान पूंजीपति वर्ग के योगदान से कम होता है।

8. **जातियों के बीच सांस्कृतिक भिन्नता होती है, वर्गों के बीच नहीं**– परम्परागत रूप से सभी जातियों के व्यहार के नियम एक दूसरे से भिन्न होने के कारण प्रत्येक जाति की अपनी–अपनी एक अलग संस्कृति विकसित हो गयी है। इसके बाद भी विभिन्न अवसरों पर सभी जातियां एक दूसरे को अपनी सेवाएं प्रदान करती है। उनके बीच किसी तरह की प्रतियोगिता नहीं होती। दूसरी ओर, विभिन्न वर्गों की संस्कृति एक दूसरे के समान हो सकती है लेकिन अपने–अपने हितों के कारण सभी वर्गों के बीच एक स्पष्ट प्रतियोगिता देखने को मिलती है। यही प्रतियोगिता अक्सर संघर्ष का रूप भी ले लेती है।

9. **जातियों का आधार धार्मिक परम्पराएं हैं, जबकि वर्ग का आधार विशेषीकरण है**– जाति व्यवस्था अथवा जाति–विभाजन को धार्मिक मान्यता मिली हुई है। विभिन्न धर्मग्रन्थों द्वारा जन्म और पुर्नजन्म, कर्म के सिद्धान्त तथा अनेक दूसरे विश्वासें को मान्यता देकर जातियों के विभाजन को स्थायी बनाये रखने का प्रयत्न किया जाता रहा है इसके विपरीत समाज में विभिन्न वर्गो का निर्माण विशेषीकरण की बढती हुई प्रक्रिया के कारण हुआ है।

प्र010– जाति व्यवस्था के बदलते आयामों का सविस्तार वर्णन कीजिए –

उत्तर– जाति व्यवस्था के बदलते आयाम निम्नलिखित हैं–

1. **जाति संस्तरण को अस्वीकृति**– सम्पूर्ण जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित एक सुनिश्चत संस्तरण पर आधारित थी। धार्मिक नियमों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी से उच्च जातियों को सम्मान देना तथा उनके अधिकारों को मानना आवश्यक था। आज कोई भी व्यक्ति अपने आप को उच्च जाति से नीचा मानने के लिए तैयार नहीं है। इसके विपरीत, उच्च जातियों की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित व्यवहार के जिन नियमों को आवश्यक समझा जाता था, उनका खुलेआम विरोध करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ रही है। एक–एक वर्ण से सम्बन्धित जिन अनेक जाति समूहों के बीच भी एक निश्चित संस्तरण था, वह पूरी तरह टूट चुका है। इसकी जगह वर्ण से सम्बन्धित विभिन्न जातियों के बीच ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है तथा उनके बीच वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापता को भी एक प्रगतिशील दृष्टिकोण के रूप में देखा जाने लगा।
2. **जातिगत नियमों में परिवर्तन** – भारत में जाति व्यवस्था इतने लम्बे समय तक इसीलिए प्रभावपूर्ण रही कि भोजन, व्यवसाय, सामाजिक सम्पर्क तथा विवाह के आधार पर सभी जाति समूहों को एक दूसरे से अलग रखा गया। सभी जानते हैं कि आज रेलवे स्टेशनों, होटलों, जलपान गृहों, कार्यालयों की कैण्टीनों तथा सामान्य दुकानों जैसे स्थापनों से कोई भी व्यक्ति खान–पान की वस्तुएं लेने में कोई संकोच नहीं करता जबकि ऐसी सभी वस्तुएं साधारणतया उन लोगों द्वारा बनायी जाती हैं जिन्हें जाति व्यवस्था के अन्तर्गत अस्पृश्य समझा जाता था। जातियों का व्यावसायिक विभाजन पूरी तरह टूट चुका है। आज सभी जातियों के लोग प्रत्येक व्यवसाय में लगे हुए हैं। सामाजिक सम्पर्क के क्षेत्र में विभिन्न जातियों के बीच तेजी से निकटता बढ रही है। नयी पीढ़ी के युवा अपने साथियों की जाति को न तो जानते हैं और न जानना उचित समझते हैं। अपने वर्ण से सम्बन्धित जातियों के बीच

अन्तर्विवाह का नियम केवल इस कारण बना हुआ है जिससे पति–पत्नी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में समानता होने से उनके बीच आसानी से समायोजन हो सके।

3. **पवित्रता तथा अपवित्रता के विचारों में परिवर्तन** – परम्परागत रूप से विभिन्न जातियों का विभेद पवित्रता सम्बन्धी विश्वासों पर आधारित था। आज पवित्रता का सम्बन्ध व्यक्ति की ऊँची जाति से नही है बल्कि स्वास्थ्य के नियमों से है। यदि ऊँची जाति का कोई व्यक्ति गन्दे व्यवसाय के द्वारा आजीविका उपार्जित करता है अथवा स्वच्छता के नियमों का पालन नहीं करता तो उसे अधिक अपवित्र माना जाता है। पवित्रता का सम्बन्ध नैतिक नियमों के पालन से अधिक है। आज भी जो लोग सच्चाई, ईमानदारी और मानव सेवा को अधिक महत्व देते हैं, उन्हें पवित्र आत्मा मानकर उनका अधिक सम्मान किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि पवित्रता और दूषण का सम्बन्ध जन्म से नहीं है बल्कि लोगों की जीवन–विधि क्रिया–कलापों से है। इन विचारों के फलस्वरूप भी जाति व्यवस्था की मान्यताएं बिल्कुल निष्क्रिय बन चुकी हैं।

4. **संस्कृतिकरण की प्रकिया -** एम.एन. श्रीनिवास द्वारा भारत में संस्कृतिकरण की बढ़ती हुई प्रक्रिया भी जाति व्यवस्था के बदलते हुए आयाम को स्पष्ट करती है। यह वह प्रकिया है जिसके अन्तर्गत निम्न जातियां के लोग भी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करते हैं, मंदिरों में अनुभव करते हैं। अब निम्न जातियों के लोग भी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करते है। मन्दिरों में पूजा–उपासना में भाग लेते हैं इच्छानुसार जनेऊ धारणा करते हैं, तीर्थ–यात्राओं के द्वारा आत्मिक सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं तथा सर्वोच्च शिक्षा संस्थाओं के उच्च जातियों के बच्चों को शिक्षा भी देते हैं। दूसरी ओर उच्च जातियों में मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ने, अपराधी व्यवहारों के प्रतिशत में वृद्धि होने तथा दुष्कर्मों में लिप्त होने से वे असंस्कृतिकरण की ओर बढ़ रहें

है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे भविष्य में जाति व्यवस्था से सम्बन्धित ऊँच–नीच के विभेद को किसी भी तरह नहीं बनाये रखा जा सकता।

5. **प्रभु जातियों का उदय -** ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में आज कौन सा जाति समूह उच्च है और कौन सा निम्न इसका निर्धारण आज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र के विभेद के आधार पर नहीं होता। परम्परावादी ग्रामीण जीवन तक में जिस जाति के लोगो का अपनी अथवा 'प्रभु जाति' के रूप में देखा जाता है। अन्य सभी जातियों के लोग उन्हीं के प्रभाव में रहकर काम करते हैं। नगरों में भी यदि निम्न जाति का कोई व्यक्ति राजनीतिक और आर्थिक रूप से प्रभावशाली होता है तो उच्च लोकतान्त्रिक व्यवस्था में चुनाव जीतने के लिए उच्च जातियों के प्रत्याशी उन बहुसंख्यक निम्न जातियों से अधिक से अधिक सम्पर्क बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। जिन्हें कभी सामाजिक और राजनीतिक सहभागिता का कोई अधिकार नहीं था।

6. **अन्तर्जातीय सम्बन्धों में उदारता** – जाति व्यवस्था की बदलती हुई प्रकृति का एक विशेष पहलू यह है कि विभिन्न जाति समूहों के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्ध किसी पर दबाव पर आधारित नहीं हैं बल्कि समताकारी मनोवृत्तियों का परिणाम हैं। अतीत में भी जजमानी व्यवस्था के द्वारा विभिन्न जातियों को एक–दूसरे का पूरक बनाया गया था लेकिन जजमानी व्यवस्था में विभिन्न जातियों के सम्बन्ध ऊंच–नीच के भेद पर आधारित थे। वर्तमान में विभिन्न जातियों के बीच जिस तरह से आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। वे समतावादी होने के साथ ही ऐच्छिक हैं। यह सम्बन्ध किसी तरह के पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं है यह एक ऐसा परिवर्तन है जिससे भविष्य में जातिगत संस्तरण के पूरी तरह समाप्त हो जाने की आशा की जाती है।

7. **नेतृत्व के नये प्रतिमान-** परम्परागत जाति व्यवस्था के अन्तर्गत नेतृत्व केवल उच्च जातियों तक ही सीमित था। आज की लोकतान्त्रिक व्यवस्था में

एक नेतृत्व अधिक धर्मनिरपेक्ष और अर्जित है। निम्न जातियों की प्रधानता है। यह नेतृत्व अपनी प्रकृति से कहीं अधिक धर्मनिरपेक्ष और अर्जित है। निम्न जातियों में सामाजिक और राजनीतिक जागरूक बढ जाने के कारण, उन्होंने अपने आपको इस तरह संगठित करना शुरू कर दिया है जिससे वे विभिन्न राजनीतिक दलों पर दबाव–समूह के रूप में कार्य कर सकें। वास्तव में, नेतृत्व का सत्ता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। निम्न और पिछड़ी हुई जातियों में नेतृत्व की क्षमता विकसित होने से उनकी राजनीतिक शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। कुछ समय पहले तक इस राजनीतिक शक्ति का उपयोग उच्च जातियों का विरोध करने के लिए किया जाता था लेकिन अब यह शक्ति एक नये सामाजिक सन्तुलन का निर्माण करने से सम्बन्धित होने लगी है।

8. **जातियों का वर्गों में संक्रमण -** वर्तमान दशाओं में भारत का परम्परागत जाति विभाजन आज विभिन्न वर्गों के रूप में बदल रहा है। इस सम्बन्ध में राधाकमल मुकर्जी ने लिखा है कि आज जाति व्यवस्था से सम्बन्धित खान–पान, छुआछूत और पवित्रता व अपवित्रता के प्रतिबन्ध ही कमजोर नहीं हुए हैं बल्कि विभिन्न जातियों के व्यक्ति व्यावसायिक आधार पर संगठित होने लगे हैं। इसका तात्पर्य है कि जो लोग एक समान व्यवसाय के द्वारा अजीविका उपार्जित करते हैं, वे अपनी जातिगत विभिन्नता को उतना महत्व नहीं देते जितना कि समान आर्थिक हितों को। यह विशेषता आर्थिक वर्गों की पहचान है, जातियों की नहीं, इसी बात को ब्राइस रेन ने दूसरे ढंग से स्पष्ट किया है। आपका विचार है कि सामाजिक वर्गों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके बीच कोई सांस्कृतिक अन्तर नही होता लेकिन फिर भी एक वर्ग दूसरे से प्रतियोगिता करके अपने हितों को पूरा करने का प्रयत्न करता है।

यदि हम विभिन्न जातियों की वर्तमान संरचना को देखें तो स्पष्ट होता है कि विभिन्न जातियों के बीच धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताएं

लगभग समाप्त हो चुकी हैं लेकिन आर्थिक और राजनीतिक आधार पर विभिन्न जातियां संगठित होकर दूसरी जातियों से प्रतियोगिता के द्वारा आगे निकलने का प्रयत्न करती रहती हैं। यह दशा भी जातियों का वर्गों के रूप में होने वाले संक्रमण को स्पष्ट करती है।

वर्तमान भारतीय समाज सांस्कृतिक और सामाजिक आधार पर संक्रमण के युग गुजर रहा है इसमें एक ओर हम अपनी रूढ़िगत और असमानताकारी व्यवस्थाओं से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सके हैं तो दूसरी ओर धर्मनिरपेक्षता, शिक्षा, तार्किकता तथा मानवतावाद पर आधारित मूल्यों का प्रभाव तेजी से बढ़ाया जा रहा है। इस सन्धिकाल में अधिकाश व्यक्ति मानसिक रूप सं न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के पक्ष में हैं लेकिन आन्तरिक रूप से वे परम्पराओं के बन्धन से उसी तरह जकड़े हुए हैं जिस तरह बैल खूंटें से बंधा होने के कारण स्वतन्त्र रूप से नहीं घूम सकता। इसके बाद वर्तमान समाज में परिवर्तन की नयी प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहना उचित होगा कि भारतीय समाज में विभिन्न जातियां भले ही वर्गों के रूप में परिवर्तित न हों लेकिन जातियों के बीच जन्मजात संस्तरण तथा प्रभुत्व और अधीनता के सम्बन्धों की प्रणाली पूरी तरह समाप्त हो जायेगी।